# इचलकरंजी के सजावटी तोरन : कुछ साल बाद इस शिल्पकला का कोई नामलेवा न बचेगा

70 साल की उम्र में, महाराष्ट्र के इचलकरंजी शहर के मुरलीधर जवाहिरे बड़ी मेहनत से काग़ज़ और बांस से बनने वाले तोरन (दरवाज़े पर लटकाई जाने वाली सजावटें) तैयार करते हैं. उन्हें अब भी इस शिल्पकला पर गर्व है जिसे आजकल कोई सीखना नहीं चाहता है

जब मुरलीधर जवाहिरे काम करने बैठते हैं, तो ग़लती और ध्यान भटकने का कोई सवाल ही नहीं खड़ा होता. उनके हाथ तोरन के जोड़ों को जोड़ते हुए तेज़ी से और चुपचाप चलते रहते हैं और उन्हें एक मोटे सूती धागे से बांधते हैं. उनके 70 वर्षीय कमज़ोर कद-काठी को देखकर उस ठोस एकाग्रता का अहसास नहीं होता जिसे वह लगभग हर दिन अपने द्वारा तैयार किए गए बांस के फ्रेमों में ढालते हैं.

महाराष्ट्र के इचलकरंजी शहर में, उनके फ़िरोजी रंग के मिट्टी और ईंट से बने घर के बाहर, उनके काम का सामान चारों ओर बिखरा हुआ है जहां वह बैठकर काम करते हैं. इन सामानों में, बांस की छड़ियां, रंगीन काग़ज़, जिलेटिन पेपर, पुराने अख़बार, और काफ़ी कुछ और शामिल है. ये, कुछ ही घंटों में, जटिल तोरनो में बदल जाएंगे ; तोरन घरों और मंदिरों के चौखटों को सजाने के लिए इस्तेमाल की जाने वाली माला जैसी चीज़ है.

मुरलीधर की झुर्रियों वाली हथेलियां तेज़ी से एक बांस की छड़ी के हिस्से को समान आकार के 30 टुकड़ों में काटती हैं. फिर वह अपने मन के ज्ञान पर पूरी तरह से भरोसा करते हुए इन्हें नौ समान भुजाओं वाले त्रिकोणो में बदल देते हैं. ये त्रिकोण बांस की छड़ियों से जुड़े होते हैं जो 3 या 10 फीट लंबी होती हैं.

समय-समय पर, मुरलीधर अपनी उंगलियों को एक अल्युमीनियम के कटोरे में डुबोते हैं, जिसमें 'खल' रखा है. यह एक प्रकार का गोंद हैं, जिसे इमली के कुचले हुए बीजों से बनाया जाता है. उनकी पत्नी शोभा, जिनकी उम्र 60 बरस के आस-पास है, ने इस गोंद को उस सुबह ही बनाया है. वह बताती हैं, "वह काम करते समय एक शब्द भी नहीं कहेंगे, और कोई भी उन्हें काम के दौरान रोक नही सकता है."

मुरलीधर चुपचाप बांस के फ्रेम बनाना जारी रखते हैं और दूसरी तरफ़ शोभा सजावट के कामों की तैयारी करती हैं – वह रंगीन जिलेटिन पेपर के गोलाकार टुकड़ों को एक लटकन में बुनती हैं. वह कहती हैं, "जब भी मुझे घर के कामों से समय मिलता है, मैं इसे करना शुरू कर देती हूं. लेकिन इस काम से आंखों पर

काफ़ी दबाव पड़ता है."

वह गोंद के लिए जिन इमली के बीजों का उपयोग करती हैं उनकी कीमत 40 रुपए प्रति पेली (पांच किलो) है, और वह हर साल 2-3 पेली का उपयोग करती हैं. तोरनों को सजाने के लिए, जवाहिरे परिवार 100 से अधिक छोटी-छतरियां, नारियल, और रघु (तोते) का भंडार रखता है, जो कि सभी पुराने अख़बारों से बने होते हैं. शोभा बताती हैं, "हम इन्हें घर पर बनाते थे, लेकिन अब उम्र बढ़ने के कारण इन्हें बाज़ार से ख़रीद लेते हैं. नारियल और रघु के 90 पीस के लिए हम कुल 100 रुपए ख़र्चते हैं." एक बार फ़्रेम तैयार हो जाने के बाद, मुरलीधर इसके डिज़ाइन को तैयार करना शुरू कर देते हैं.

जवाहरे परिवार कई पीढ़ियों से तोरन बना रहा है. मुरलीधर गर्व के साथ कहते हैं, "मैंने अपने पिता से सुना है कि हमारी कला कम से कम 150 साल पुरानी है." उनका परिवार ताम्बत समुदाय (महाराष्ट्र में ओबीसी के अंतर्गत सूचीबद्ध समुदाय) से आता है और पारंपरिक रूप से तोरन बनाने, नल की मरम्मत करने, और पीतल व तांबे के बर्तनों की टिन-कोटिंग करने के लिए जाना जाता है.

उनके पिता तांबे या पीतल के बर्तनों पर चावी (नल) लगाने का काम, बाम्ब (पारंपरिक वॉटर हीटर) की मरम्मत का काम, और पीतल व तांबे के बर्तनों की कलई (टिन-कोटिंग) का काम करते थे. लेकिन वह बताते हैं कि कलई करने का काम दो दशक पहले ही बंद हो गया था. "अब पीतल और तांबे के बर्तनों का इस्तेमाल कौन करता है ? अब सिर्फ़ स्टील और प्लास्टिक के बर्तन होते है, जिन्हें कलई की कोई ज़रूरत नहीं होती."

वह बताते हैं कि उनका परिवार कोल्हापुर ज़िले के इचलकरंजी क़स्बे का आख़िरी परिवार है, जो अभी भी पारंपरिक तौर पर हाथ से तैयार किए गए तोरन बना रहा है : "हम अकेले हैं, जो इन्हें बनाते हैं," कुछ दशक पहले ही कम से कम 10 परिवार यह काम करते थे. वे कहते हैं, "आजकल कोई इस कला के बारे में पूछने तक नहीं आता. इसे सीखना तो भूल ही जाओ."

फिर भी, उन्होंने यह सुनिश्चित किया है कि तोरनों की क्वालिटी वही रहे. वह कहते हैं, "कहिच बादल नाहीं. टिच क्वालिटी, टोंच नमुना" – कुछ बदला नही है. वही क्वालिटी है और वही टेम्पलेट (नमूना) है.

मुरलीधर तक़रीबन 10 साल के थे, जब उन्होंने अपने पिता को देखकर तोरन बनाना शुरू किया. वे बताते हैं कि किसी भी जियॉमेट्रिक टूल के बिना तोरन के डिज़ाइन बनाने में कई दशकों के अभ्यास की ज़रूरत होती है. "एक सच्चे कलाकार को स्केल की ज़रूरत नहीं होती है. हममें से किसी ने भी नापने वाले उपकरणों का इस्तेमाल नहीं किया है. हमें नापने की ज़रूरत नहीं पड़ती है. यह सब हम स्मृति से करते हैं."

डिज़ाइन का कोई लिखित रिकॉर्ड भी नहीं है. वह कहते हैं, "कशाला पहिजे ?" किसी को टेम्प्लेट की ज़रूरत क्यों होगी ? "लेकिन इसके लिए सटीक निगाह और कौशल की ज़रूरत होती है." शुरुआत करते समय, वह गलतियांक करते थे, लेकिन अब एक बांस का फ़्रेम बनाने में उन्हें केवल 20 मिनट लगते हैं.

उस दिन वह जिस फ्रेम पर काम कर रहे होते हैं उस पर वह एक काग़ज़ की छतरी बांधते हैं, फिर दो पीले मोर वाले प्रिंट को बांधते हैं. उन्होंने इन्हें 28 किलोमीटर दूर कोल्हापुर शहर से ख़रीदा है. मुरलीधर और शोभा फिर हर दूसरे त्रिभुजाकार फ्रेम में हिंदू देवी-देवताओं की तस्वीरें लगाते हैं. ये तस्वीरें या तो कर्नाटक के निपानी शहर या कोल्हापुर शहर से थोक में ख़रीदी जाती हैं. मुरलीधर कहते हैं, "अगर हमें फ़ोटो नहीं मिलती है, तो मैं पुराने कैलेंडर, शादी के कार्ड, और अखबार में फ़ोटो ढूंढता हूं और कट-आउट का इस्तेमाल करता हूं." इस्तेमाल की जाने वाली तस्वीरों की कोई निश्चित संख्या नहीं है. वह कहते हैं, "यह कलाकार पर निर्भर करता है." यह तस्वीरें बाद में चमकदार जिलेटिन शीट से ढकी जाती हैं.

फिर बाक़ी के फ्रेम को प्रिंटेड रंगीन पेपर से सजाया जाता है. अंदाज़न हर 33×46 इंच की शीट की क़ीमत 3 रुपए है. मुरलीधर बेहतर क्वालिटी वाले तोरनों के लिए वेलवेट पेपर का इस्तेमाल करते हैं. फ्रेम के निचले सिरे पर दो पेपर के तोते बंधे होते हैं, और हर त्रिभुज के नीचे जिलेटिन लटकनों के साथ सुनहरी पन्नी में लिपटे एक पेपर के नारियल को लटका दिया जाता है.

मुरलीधर कहते हैं, "10 फ़ीट की तोरन में लगभग पांच घंटे लगते हैं." लेकिन वह अब काम का एक निश्चित शेड्यूल नहीं फॉलो करते हैं. "आओ जाओ, घर तुम्हारा," – वह एक हिंदी कहावत को इस्तेमाल करते हुए कहते हैं कि वह अपने काम को कभी भी करने के लिए आज़ाद हैं.

शेड्यूल अब भले ही तय न रहता हो, लेकिन उनकी निगाह अब उतनी ही सटीक है. घंटों की मेहनत के बाद उन्हें इस बात का गर्व है कि इस कला में कुछ भी बेकार नहीं जाता है. "सिर्फ़ प्लास्टिक और अन्य हानिकारक सामानों से बने आधुनिक तोरनों को देखें. वे सभी पर्यावरण के लिए ख़राब हैं."

सभी तोरन 3 से 10 फ़ीट लंबे हैं – छोटे तोरनों की सबसे अधिक मांग है. इनकी क़ीमत 130 रुपए से लेकर 1200 रुपए तक होती है. नब्बे के दशक के अंत में, मुरलीधर को इन तोरनों से 30 से 300 रुपए तक मिल जाते थे.

मुरलीधर समान नाप के 30 टुकड़े काटते हुए, और फिर इन्हें अपने हुनर से 9 समान भुजाओं वाले त्रिकोणों में बदलते हुए

मुरलीधर सुंदर व जटिल बाशींगा भी बनाते हैं, जो विवाह समारोहों के दौरान दूल्हा और दुल्हन दोनों के माथे पर पहनाए जाने वाले मुकुट जैसा आभूषण है. यह जात्राओं (ग्रामीण मेलों) के दौरान स्थानीय देवताओं को भी चढ़ाया जाता है. उन्हें एक जोड़ी पेपर बाशींगा बनाने में 90 मिनट लग जाते हैं. हर एक बाशिंगा 150 रुपए में बिकता है. वह कितने बाशिंगा बेच पाते हैं, यह ऑर्डर और सीज़न पर निर्भर करता है. हर दिवाली पर, जवाहिरे परिवार बांस और सजावटी काग़ज़ का इस्तेमाल करके लालटेन भी बनाते हैं.

मुरलीधर कहते हैं, "क्योंकि यह हमारी रस्मों का हिस्सा है, इसलिए बाशिंगा की मांग कम नहीं हुई है. लेकिन, लोग केवल त्योहारों और दिवाली, शादी, वास्तु जैसे अवसरों पर ही तोरन ख़रीदते हैं."

मुरलीधर ने कभी भी अपनी कलाकारी किसी व्यापारी को नहीं बेची है. उन्हें लगता है कि वे उनके हुनर के साथ अन्याय करते हैं. “वे मुश्किल से हमें 10 फ़ीट के तोरन के लिए 60 या 70 रुपए देते हैं. न हमें पर्याप्त लाभ मिलता है, न ही वे हमें समय पर पैसे देते हैं.” इसीलिए, मुरलीधर सीधे उन ग्राहकों को बेचना पसंद करते हैं जो ख़रीदने के लिए उनके घर तक आते हैं.

लेकिन, बाज़ार में उपलब्ध प्लास्टिक के विकल्पों ने उनके शिल्प के अस्तित्व को काफ़ी मुश्किल में डाल दिया है. मुरलीधर कहते हैं, “वे सस्ते और बनाने में आसान हैं.” मुरलीधर की औसत मासिक आय मुश्किल से 5000-6000 रुपए है. कोविड-19 महामारी और लॉकडाउन ने उनके संघर्ष को और बढ़ा दिया है. वह कहते हैं, “मुझे महीनों से एक भी ऑर्डर नहीं मिला है. पिछले साल लॉकडाउन में पांच महीने तक तोरन ख़रीदने कोई नहीं आया था.”

मुरलीधर 1994 के प्लेग को याद करते हैं, जब उनका पूरा परिवार घर छोड़कर चला गया था. वह कहते हैं, “हम महामारी के कारण [खुले] मैदानों में गए थे और अब सभी को कोरोना के कारण घर पर रहने के लिए कहा गया है. समय कैसे बदलता है न.”

समय वाक़ई बदल गया है. जहां मुरलीधर ने अपने पिता से अपना कौशल सीखा, वहीं उनके बच्चों को तोरन बनाने की पेचीदगियों में कोई दिलचस्पी नहीं है. वह कहते हैं, “उन्होंने खल [इमली का गोंद] को छुआ तक नहीं है. वे इस कला के बारे में क्या समझेंगे ?” उनके 36 वर्षीय बेटे योगेश और 34 वर्षीय बेटे महेश, लेथ मशीनों पर मज़दूर के रूप में काम करते हैं, जबकि उनकी 32 वर्षीय बेटी योगिता एक गृहिणी हैं.

लगभग छह दशकों की कड़ी मेहनत के बाद, जिसमें उनके बनाए तोरनों से कई दरवाज़ों को और बाशिंगो से कई माथों को सजाया गया है, मुरलीधर के पास अपनी विरासत को आगे बढ़ाने के लिए कोई नहीं है. वह मुस्कुराते हुए कहते हैं, “हम अब कबाड़ जैसे हो गए हैं.”

फ़्रेम बनाने की प्रक्रिया मुरलीधर जवाहिरे द्वारा 18 फ़ीट लंबे बांस की छड़ी के हिस्सों को काटने से शुरू होती है। छड़ी को और काटने से पहले, मुरलीधर बांस को कुछ जगहों पर घुमाकर ढालते और आकार देते हैं। फिर वह कैंची से टुकड़ों को काटना शुरू करते है : 'हममें से किसी ने भी नापने वाले उपकरणों का इस्तेमाल नहीं किया है. हमें नापने की ज़रूरत नहीं पड़ती है. यह सब हमारी स्मृति में है। 'यह सुनिश्चित करने के लिए कि त्रिभुजाकार फ़्रेम बरक़रार रहे, मुरलीधर एक मोटे सूती धागे के साथ छड़ियों को बांधते हैं। समय-समय पर मुरलीधर अपनी ऊंगलियों को एक पुराने एल्युमिनियम के कटोरे में डुबोते हैं, जिसमें खल रखा होता है। यह सुनिश्चित करने के लिए कि फ़्रेम ख़राब न हों, मुरलीधर उस पर खल लगाते हैं – यह एक प्रकार का गोंद है जिसे इमली के बीजों के टुकड़ों करके बने आटे से बनाया जाता है। एक बांस के फ़्रेम को हाथ से बनाने में उन्हें केवल 20 मिनट का समय लगता है, जिसे बाद में एक मोटे बांस पर कील से लगाया जाता है। मुरलीधर से शादी के बाद शोभा ने भी हाथ से बनने वाले तोरनों का काम करना शुरू किया – यह उनका पारिवारिक पेशा है

घर का काम पूरा करने के बाद, शोभा, जिलेटिन शीट्स से पेपर की लटकने बुनने लगती हैं। मुरलीधर और शोभा ने काग़ज़ की 100 से अधिक 'छतरियों' का भंडार रखा है, जिनका उपयोग तोरन बनाने में

शामिल सजावटी सामान के रूप में किया जाता है.। मुरलीधर अपने आंगन में तोरन दिखाते हुए – इस उम्मीद में कि लोग इसे ख़रीद लेंगे।

जहां मुरलीधर ने अपने पिता से अपना कौशल सीखा, वहीं उनके बच्चों को तोरन बनाने की पेचीदगियों में कोई दिलचस्पी नहीं है. जवाहिरे परिवार शादी समारोह के दौरान दूल्हा और दुल्हन दोनों द्वारा माथे पर पहने जाने वाले मुकुट जैसा आभूषण, बाशींगा भी बनाते हैं। पेपर के बशींगा का एक सेट बनाने में उन्हें 90 मिनट लगते हैं. एक बाशिंगा 150 रुपए में बिकता है. वह कितने बाशिंगा बेच पाते हैं, यह ऑर्डर और सीज़न पर निर्भर करता है।

जात्राओं (ग्रामीण मेलों) के दौरान स्थानीय देवताओं को भी बाशींगा चढ़ाया जाता है. लेकिन कड़ी मेहनत के साथ इन जटिल वस्तुओं को बनाते हुए लगभग छह दशक गुज़ारने, मुरलीधर के पास अपनी विरासत को आगे बढ़ाने वाला कोई नहीं है

अनुवाद : पंखुरी ज़हीर दासगुप्ता

साभार- https://ruralindiaonline.org/ से